निंदक नियरे राखिए, ऑंगन कुटी छवाय, बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।

अर्थ : जो हमारी निंदा करता है, उसे अपने अधिकाधिक पास ही रखना चाहिए। वह तो बिना साबुन और पानी के हमारी कमियां बता कर हमारे स्वभाव को साफ़ करता है.

कबीर’ संगत साध की, कदे न निरफल होइ ।

चंदन होसी बांवना,नींब न कहसी कोइ ॥3॥

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं – साधु की संगति कभी भी व्यर्थ नहीं जाती, उससे सुफल मिलता ही है । चन्दन का वृक्ष बावना अर्थात् छोटा-सा होता है, पर उसे कोई नीम नहीं कहता, यद्यपि वह कहीं अधिक बड़ा होता है ।

`कबीर’ संगति साध की, बेगि करीजै जाइ ।

दुर्मति दूरि गंवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥4॥

भावार्थ / अर्थ – साधु की संगति जल्दी ही करो, भाई, नहीं तो समय निकल जायगा । तुम्हारी दुर्बुद्धि उससे दूर हो जायगी और वह तुम्हें सुबुद्धि का रास्ता पकड़ा देगी ।

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर, कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।

अर्थ : कोई व्यक्ति लम्बे समय तक हाथ में लेकर मोती की माला तो घुमाता है, पर उसके मन का भाव नहीं बदलता, उसके मन की हलचल शांत नहीं होती. कबीर की ऐसे व्यक्ति को सलाह है कि हाथ की इस माला को फेरना छोड़ कर मन के मोतियों को बदलो या फेरो.

पाहन पूजे हरि मिले , तो मैं पूजूं पहार।

याते चाकी भली जो पीस खाए संसार।।

शब्दार्थ: पाहन – पत्थर , पूजे-पूजना, स्तुति करना, हरि-भगवान/ईश्वर, पहार – याते-इससे, की अपेक्षा कृत, भली-बेहतर है, पहाड़ , चाकी-अन्न पीसने वाली चक्की।

दोहे का हिंदी भावार्थ : कर्मकांड और मूर्तिपूजा पर कटाक्ष करते हुए साहेब की वाणी है की ईश्वर की स्तुति और पूजा के लिए किसी मूर्ति और स्थान विशेष की कोई आवश्यकता नहीं है। समकालिक समाज में धर्म के ठेकेदारों ने धर्म को भी व्यापर बना दिया था । व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक आडम्बर और कर्मकांडों का बोलबाला था । आम जन इससे सबसे अधिक व्यथित था। सामंतवादी शक्तियां भी धार्मिक ठेकेदारों से मिली हुयी थी और किसी भी अत्याचार को धर्म के नाम से दबा दिया जाता था। साहेब की वाणी है की पत्थर की मूर्ति में ईश्वर नहीं है। यदि पत्थर को पूजने मात्र से ही ईश्वर की प्राप्ति संभव हो तो पहाड़ को पूजा जाना चाहिए। पत्थर की मूर्ति की तुलना में पत्थर की चाकी 'चक्की' उपयोगी और बेहतर है जिससे आम जन अनाज को पीस कर खाती है। ईश्वर की स्तुति आत्मा से की जानी चाहिए, सांकेतिक रूप से नहीं। अन्य स्थान पर साहेब की वाणी है की भक्ति/ईश्वर की आराधना मन से की जानी चाहिए।

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।

परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर।। इस का मतलब वृक्ष कभी भी अपना फल खुद नहीं खाता, न ही नदी कभी अपना जल पीती है| उसी प्रकार साधू संतों का जीवन दूसरों के परमार्थ और परोपकार के लिए ही होता है|

गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूं पाँय ।

बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो मिलाय ॥

अर्थ – कबीर दास जी इस दोहे में कहते हैं कि अगर हमारे सामने गुरु और भगवान दोनों एक साथ खड़े हों तो आप किसके चरण स्पर्श करेंगे? गुरु ने अपने ज्ञान से ही हमें भगवान से मिलने का रास्ता बताया है इसलिए गुरु की महिमा भगवान से भी ऊपर है और हमें गुरु के चरण स्पर्श करने चाहिए